रैनबसेरा

श्रीशंभूदयाल सकसेना

●

प्रकाशक
नवयुग-ग्रंथ-कुटीर
फर्रुखाबाद

[प्रथम बार]
सजिल्द १॥)

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

सूची

प्रथम पक्ति	पृष्ठ
१. कुटिया मे एक अकिंचन की	९
२ मै युगो से वद घर हूँ	१६
३ गाँव की ओर	१९
४ युगारभ	२५
५. कच्चे घर	२७
६. प्यार मैने भी किया था	३०
७ वह गया सरिते ! कितना पानी ?	३१
८. मेरे लिए न अश्रु वहाओ	३२
९ प्यार है वधन तुम्हारा	३३
१० जीवन के नन्हें नन्हें पग	३४
११. वादल आसमान में छाये	३५
१२. हार कितने गूँथ डाले	३६
१३ मेरी अकल्पित कल्पना हो	३७
१४ प्रिये, कैसा सुरम्य ससार !	३८
१५ पुतले है हाड-मास के हम	३९
१६ काम जीवन में जतन का	४०
१७ हाय, दुख भी छोड भागा	४१
१८ नभ के ज्योतित तारे	४२
१९ आज कितनी प्यास तन में	४३

	प्रथम पक्ति	पृष्ठ
२०.	रोना ही तो शेष यहाँ रे !	४४
२१	आज जीवन का सवेरा	४५
२२	हाय, कितनी आग तन में !	४६
२३	रो रहा है गान मेरा . .	४७
२४	उर-अन्तर मे आज हमारे . ..	४८
२५	दो घडियो का रैनबसेरा . ..	४९
२६	जीवन मे एक हिलोर प्रिये ! ..	५०
२७	वे पल अमर हुए जीवन में ..	५१
२८	वेदना मानस में है जडी .	५२
२९.	कैसी कुलीनता, कैसा बल !	५३
३०.	रोटी को तरस रही दुनियाँ	५६
३१.	माना, वह एक कहानी है	५७
३२	हम हरवाहे, चरवाहे है	५८
३३.	हम आज कहाँ के कहाँ गये ?	५९
३४	चाह ककड के हृदय मे	६१
३५	जो राजा थे वे रक हुए	६३
३६	भार दिल में है न थोडा	६४
३७	यह मार्ग कहाँ को जाता है ?	६५
३८	जीने का है अधिकार किसे ?	६६
३९	रात कैसी है अँधेरी ! .	६७
४०.	मरु में सजल भूमि सोती है	६८
४१	खोजती किसको सहेली ?	६९

प्रथम पक्ति	पृष्ठ
४२ भाग्य-शिला पर कर्म-लेख बन	७०
४३ स्वाधीन हमें कहते हो क्यो ?	७२
४४. यह पर्णकुटी शाला मेरी	७३
४५ सागर में जल थोडा	७४
४६ सनसन बहता रे आज श्वसन	७५
४७ कुछ अनहोनी-सी घटना है	७६
४८ खडहर की आँखो में पानी !	७७
४९ गिरि से गिर जलधारा	७९
५० चित्र प्रिय, ऐसा बनाओ	८१
५१ सब कुछ तो सपना ही सपना	८३
५२ जीवन के वे मधु क्षण आली !	८४
५३ है भिन्न सदा जग का आशय	८५
५४ घन में, वन में, मौन विजन में	८८
५५ क्यो रोते है शृगाल वन में ?	८९
५६ मानव तो कच्चा धागा है	९१
५७ मेरी रानी अगूरलता !	९२
५८ आज अपने अश्रु खारे !	९४
५९ हम, उर-अतर के छाले	९६
६० झिलमिलाता साध्य-तारा	९७
६१ कुछ मधुर और कुछ खारा रे !	९८
६२ दुख से जर्जर अभाव-रीती	९९
६३ हम नदी के दूरवर्ती कूल	१०१

रैनबसेरा

प्रथम पंक्ति	पृष्ठ
६४. प्यार से सूनी जवानी	१०३
६५. भूल जीवन में सका मैं	१०४
६६ प्यार है बंधन तुम्हारा	१०५
६७. औषधि की बूंद	१०६
६८ महायुद्ध	११५

रैनबसेरा

[१]

कुटिया में एक अकिंचन की,

वे हेम-रजत, मणि-रत्न प्रचुर,
जिनसे रहते जगमग गृह-पुर,
कैसे वे दीप-दिव्य होगे,
कैसी होगी गरिमा धन की ?
कुटिया में एक अकिंचन की।

सचय को कौडी पास नही,
तो भी मन रच उदास नही,
मजूषा मे अरमानो की,
दुनियाँ हूँ मै उस निर्धन की।
कुटिया में एक अकिंचन की।

तारे गृह-दीप जगें मेरे,
नभ-नील-वितान मुझे घेरे,
वसुधा मखमली बिछौना है,
इच्छा हो मुझको किस धन की ?
कुटिया में एक अकिंचन की।

रैनबसेरा

है पवन अबाध अतिथि मेरा,
रवि-शशि का नित होता फेरा,
पी जाती हूँ मै खडे-खडे,
हँस हँसकर, बूँदो को घन की।
कुटिया मै एक अकिंचन की।

मै सतयुग से हूँ खडी हुई,
खेतो में रहकर बडी हुई,
छाजन मेरा सतोष एक,
इच्छा लवलेश न कचन की।
कुटिया मै एक अकिंचन की।

भरती चाँदनी स्वय झोली,
रवि देता माथे पर रोली,
पूजा करते सुर-इन्द्र-वरुण
अभिलाषा हो फिर किस धन की ?
कुटिया मै एक अकिंचन की।

कोयल की कूक मुझे भाती,
बुलबुल मेरे सिर पर गाती,
किरणो का मधु पीने वाली
मैं भूखी हूँ किस व्यजन की।
कुटिया में एक अकिंचन की।

नाचते शिखी मेरे आगे,
सोकर नित उषा यही जागे,
मोती बटोरती खेल-खेल
रश्मियाँ यही पर कचन की।
कुटिया में एक अकिंचन की।

मधु-घट छलके ये फुल्ल फूल,
भौंरे तितली सब रहें भूल,
कैसा कटकदल, कहाँ शूल,
बस तान सुनाती गुजन की।
कुटिया में एक अकिंचन की।

एकाकी, पर गिरि, वन, सरिता–
युग युग की सहचरि चिर-भरिता,
मेरा इनका है गोत्र एक
कहती हूँ मैं इनसे मन की।
कुटिया में एक अकिंचन की।

उर्मिल लहरो का चीर पहन,
गाती लहराती झील बहन,
मैं फूलो से उसकी झोली
भरनेवाली देवी वन की
कुटिया में एक अकिंचन की

रैनबसेरा

मैं मानव की हूँ मातृभूमि,
सस्कृति की जननी जन्मभूमि,
मैं ऋषियों की ऋजुता सचित
स्मृति हूँ मैं एक चिरतन की।
कुटिया मैं एक अकिंचन की।

मैंने कृपको को जन्म दिया,
मैंने वसुधा को धन्य किया,
मेरे दुलार से पली हुई है
ससृति यह नवयौवन की।
कुटिया मैं एक अकिंचन की।

मुझ मे ,गूँजा था साम-गान,
भूली थी मैं कर सोम-पान,
मैं अग्निहोत्र की साक्षी हूँ,
मैं ही वेदी हूँ पूजन की।
कुटिया मै एक अकिंचन की।

पर आज निशा कितनी गहरी,
वह कहाँ सुकोमल स्वर लहरी ?
बाहर भीतर सब भाँय-भाँय,
सिसकी उठती है क्रदन की।
कुटिया मै एक अकिंचन की।

मैं हूँ, है मेरा घास-फूस,
पर कौन रहा ये प्राण चूस,
खाये जाती है भूख हाय।
मुझको अपने ही जीवन की।
कुटिया में एक अकिंचन की।

वह मेरा प्राकृत रम्य रूप,
वह मेरी छाया और धूप,
जिसमें शशधर की शीतलता पर
थी न कहीं दावा वन की।
कुटिया में एक अकिंचन की।

ऊँचे-ऊँचे ये भव्य भवन,
लीले जाते हैं राक्षस वन,
मेरी श्री-सीता पर सकट घन
टूट रही ईर्षा जन की।
कुटिया में एक अकिंचन की।

ये मिल, मीनारें ये गुम्बद,
जग-दानव का ये दुर्दम मद,
पूछेगा मुझको कौन आज
मैं छाया हूँ इस दुर्दिन की।
कुटिया में एक अकिंचन की।

रैनबसेरा

अपने आँचर का दूध पिला
पाला, उनसे यह सुफल मिला
मैं खाली जर्जर सिसक रही,
उनमें उठती ध्वनि नर्तन की।
कुटिया मैं एक अकिंचन की।

खा कन्दमूल सानन्द-सरल
खेला करते थे शिशु चचल,
हो स्वस्थ-वयस्क मुझे तज-तज
सब बने शक्ति जाकर धन की।
कुटिया मैं एक अकिंचन की।

वे वधुएँ स्वस्थ सुहाग-भरी,
क्षय की हो वहाँ शिकार मरी,
जीवन-मरु में रोती-रोती
वन्दिनी हुईं कल कचन की।
कुटिया मैं एक अकिंचन की।

छमछम सन-विछुए छमकाती,
फिरती थी जो सखियाँ गाती,
वे सब नगरो की ओर गईं,
थी उन्हें लालसा ककन की,
कुटिया मैं एक अकिंचन की।

बूढो में भी तो प्यास बढी,
उनको भी भायी नही मढी,
ले गये उन्हें भी भव्य भवन
मानी न रोक चिर-बंधन की।
कुटिया में एक अकिंचन की।

जो गये भले ही वे जाते,
पर सुख तो महलो में पाते,
सुनती हूँ मैं इससे-उससे
लुट गई सम्पदा सब उनकी।
कुटिया में एक अकिंचन की।

घुन गई थूनियाँ, फूस उडा,
यह निरानन्द मानस उजडा,
इस सूनी बस्ती में फिर भी
क्या होगी पैंछल रुनझुन की।
कुटिया में एक अकिंचन की।

[२]

मं युगो से वन्द घर हूँ।

साँस है आती न जाती,
वायु बहने भी न पाती,
एक सूनापन सँजोये
मैं निविड तम का शिखर हूँ।
मैं युगो से वन्द घर हूँ।

सॉय-सॉय विचित्र होती,
भॉय-भॉय हृदय विलोती,
धूल लगकर गले सोती
मै सिसकता रुद्ध-स्वर हूँ।
मै युगो से वन्द घर हूँ।

जो कपाट जडे, जडे वे,
फिर नही उघडे, अडे वे,
रुद्ध-कंठ, न वोल सकता
काल का मै क्रूर कर हूँ।
मै युगो से बन्द घर हूँ।

वन्द मेरे साथ मेरी,
है व्यथाएँ भी घनेरी,
मधुर-कोमल सस्मरणो का
पडा उजडा पहर हूँ।
मैं युगो से वन्द घर हूँ।

प्यार पाये, हार पाये,
रूप के उपहार पाये,
प्रेम-मदिर का पुजारी
आज मै अभिशप्त वर हूँ।
मै युगो से वन्द घर हूँ।

रणित नूपुर, क्वणित ककण,
छूम छननन के मधुर क्षण,
दूर—कितनी दूर, भूला
आज उनका मजु स्वर हूँ।
मै युगो से वन्द घर हूँ।

उर्वशी औ' मेनकाएँ,
तरुण कल कचन-लताएँ,
अक में ले ले उन्हें
चूमे हुए उनके अधर हूँ।
मैं युगो से वन्द घर हूँ।

मदार अपने,
है सहज सपने,
आज उनके रजकणों में भी
कहाँ पाता विचर हूँ।
मैं युगों से बन्द घर हूँ।

शेष है दीपक न बाती,
दुख रही है आह! छाती,
एक भी तो छू न सकता
हाय मैं वे चन्द्र-कर हूँ।
मैं युगों से बन्द घर हूँ।

घाम-हिम-वर्षा सुहाती,
छू न मेरे प्राण पाती,
एक भी है सँध न कोई
कौन मैं, कैसा, किधर हूँ?
मैं युगों से बन्द घर हूँ।

|||

गाँव की ओर

सब चलो गाँव की ओर चलें।
नगरो से नाता तोड चलें।

अपने अपने सब छोड दिये।
सुख-स्वप्न बीच में तोड दिये।
वे शिलाखड हैं कहाँ आज ?
दडकवन का वह कहाँ राज ?
वे कहाँ घाटियाँ विजन-प्रान्त ?
वे कहाँ सौम्य एकात शान्त ?
वे वल्कल औ मृगचर्म कहाँ ?
वे आदि वस्त्र, नर-वर्म कहाँ ?
वे कुश-कटक, तृणजाल कहाँ ?
वे घास-फूस, वनमाल कहाँ ?
वे कहाँ उटज-आश्रम ललाम ?
वे कहाँ सरित-सर पुण्य धाम ?
वे बाँसो के झुरमुट सुन्दर,
वे कुज-पुज, वे मरु-मदर,
पथ में सब बचपन के साथी
क्यो छूट गये, क्या बाधा थी ?

सस्कृति की ओर बढा मानव,
दूरागत हुआ निसर्ग-विभव ।
वह नाता, वह सबध-स्नेह,
पल भर मे सब हो गये खेह ।
गृह-गृह, नित द्वार-द्वार, पग-पग
हो गया शिल्प-कौशलमय जग ।
कृपि-कला फली, विज्ञान उगा ।
अपने अपने का ज्ञान जगा ।
नर सभ्य बना तज ग्राम्य भाव,
श्रुति, स्मृति, दर्शन का बढा चाव ।
कर्तव्य-कर्मगत रीति-नीति
निज विधि-निषेधकृत कटु प्रतीति
जग के ही साथ-साथ भू पर
बन जगड्वाल फैली दर-दर ।

सभ्यता-भार से दबा मनुज,
वह नही हिला सकता निज भुज ।
अपने ही धर्म-कर्म बधन—
बन गये, बँधा उनमे जन-जन ।
सब दिग्दिगन्त, सब ओर-छोर,
मच गया कर्म का तुमुल रोर ।
सघर्ष-जटिल जीवन-निर्झर
सब ओर बहा घर्घर्, हर्हर् ।

आकुल क्रदन, व्याकुल पुकार,
अत्याचारो का प्रखर वार।
रह रह निरीह उर उठा कसक,
कोमल कलि-किशलय गये मसक,
पग-पग पर बिखरे शूल यहाँ,
फैले थे मधुमय फूल जहाँ।
रमणीय नही रह गई धरा,
कमनीय कान्त मृदु मनोहरा।
ककाल-शेष ही रहा खडा,
जीवन-वृन्दावन सब उजडा।

इस त्राहि-त्राहि में त्राण कहाँ?
अविरत श्रम में विश्राम कहाँ?
वह सरल शाति सुख-धाम कहाँ?
मन का वह मधुर विराम कहाँ?
व्याकुल पागल नर रहा खोज,
उड गई कान्ति, वह गई ओज।
हडताल, क्रान्ति के अस्त्र विफल—
हो गये, हुआ मानव चचल।
कल नही उसे, पल नही शान्ति,
आन्दोलित उर में भरी भ्रान्ति।
चकरी-सा वह घिर घूम घूम
है अधधुध कर रहा घूम।

साहित्य-शिल्प, सस्कृति-निकेत
उसको लगते हैं भूत-प्रेत ।
वैभव के भव्य-दिव्य मन्दिर
मन को मथते, करते अस्थिर ।
आहत, पीडित वह रुद्धश्वास
कर उठता भीपण अट्टहास ।
प्रत्यय विहीन, सन्देह लीन,
वह चिर मलीन, वह दीन-हीन,
वह क्षत-विक्षत, वह अस्तव्यस्त,
वह शून्य दृष्टि, वह शोक-ग्रस्त,
असहाय, आर्त, सवल-विहीन
वह खोज रहा था पथ नवीन ।

सहसा कानो में पडी भनक—
'रे ! लौट, न आगे वढ वचक !
मत अपने मन को छले और,
जल चुका बहुत मत जले और ।
ये काल-पत्र पर लिखे लेख,
कुछ सोच देख, कुछ समझ देख ।'
रुक गया चरण, नर हुआ सजग,
देखा पीछे मुड विस्तृत मग ।
वह जनाकीर्ण, सघर्ष विपुल,
बहु स्वार्थ-जटिल, पाहन-सकुल,

तब से अब तक का लम्बा पथ
वह चलता आया द्रुत अश्लथ।
होगया व्यर्थ पर सब प्रयास,
सभ्यता-पाश बन गया त्रास।

वह झूठा सस्कृति-मोह त्याग,
अब उसी ओर को चला भाग;
जो स्नेहमयी, मधुमयी क्रोड
निष्ठुर आया था कभी छोड,
गर्दन मरोड, सबध तोड,
जीवन-सहचर से हृदय मोड।
रुकते न पाँव, थकती न चाल,
वह उडा जा रहा द्रुत अराल।
ठडी ठडी शीतल बयार,
करती स्वागत अचल पसार।
वह पगडडी की हरी दूब,
उसमें जाते मन-प्राण डूब।
सौन्दर्य लग्न, सहचर्य मग्न,
कुछ जुडा चला उर भार-भग्न।
शीतल आत्मा में नव हिलोर
हिलकोर उठी कर तुमुल रोर।
सोई वीणा के तार-तार
झनझना उठे सब एक बार।

सुर में सुर भर, नर छेड तान,
गुनगुना चला मृदु मधुर गान—
"पुरवासी सो गिरिवासी हो,
गृहवासी फिर तरुवासी हो,
जनपदवासी वनवासी हो;
मन फिर यह उटज-विलासी हो,

सब चलो गाँव की ओर चलें।
नगरो मे नाता तोड चलें।"

युगारंभ

सभ्यता जर्जर पुरातन ।

आज नित्य नई व्यवस्था
नित्य नव आनद-क्रदन ।
पुण्य थे वे पाप बनते
शाप होते शीत चन्दन ।

जीर्ण जीवन जग उठा है,
मृत्यु का पीकर हलाहल ।
आज पतझड में वसती
प्राण की उन्मत्त छलछल ।

जोड तृण-तृण नीड मानव
ने रचा था भव्य-बंदन ।
घाम-वर्षा सह युगो की
दृढ हुआ था तन-वदन-मन ।

तार तार हुआ न उसमें
लेश सामजस्य कोई ।
किन्तु इस सहार में
करवट वदलती सृष्टि कोई ।

तुग वे सस्कृति-सदन खँडहर
बने वरदान से किस ?
क्या न है उद्बुद्ध जीवनकण
गरजते नाश के मिस ?

देव-दानव होड में इस
वार मानव का परीक्षण।
अब प्रलय का दूत बन फिर
आ रहा है नव्य-नूतन।

जो कदर्थित, दलित, चर्वित,
त्रस्त, आपद्ग्रस्त जग मे।
स्पर्श से जगमग युगान्तर
के खडा वह भव्य मग में।

कच्चे घर

गोदी के घर, ऊपर छप्पर,
लौकी की बेलें चढी सुघर।
सीताफल, तुरई झूल रहे,
गूलर, बट, नीम, बबूल रहे।
ये गाय बैल बकरी के घर,
ये घास फूस लकडी के घर,
ये तालो की मिट्टी के घर।
ये बेटा औ बिट्टी के घर।
ये अम्मा औ बप्पा के घर।
ये बहू-बेटियो से सुन्दर।
इनमे जीवनरस भरा तरल।
आत्मा इनकी शुचि स्वस्थ सरल।
है आसपास सब ओर खेत,
कुछ हरे-हरे, कुछ पीत-सेत।
अरहर कपास, गेहूँ, गन्ना,
अलसी, सरसो, जौ, मटर, चना,
फूले-फूले कुछ अधमुकुलित,
कुछ गर्वोन्नत, कुछ भाव-नमित।
सनसन आनेवाला समीर
स्पर्शों से उनको अधीर

कर जाता, पुलकित रोम-रोम
हँस उठा अचानक नील व्योम ।

है फैल गया कलियुग भू पर
बिजली के तारो को छूकर ।
इजन दौडे, बिछ गई रेल ।
मोटर-विमान की ठेलपेल ।
हल-फाल पूछता कौन यहाँ ?
कृषि औ किसान सब मौन यहाँ ।
है यहाँ हथौडो की ठनठन ।
है यहाँ लौह-निर्मित जीवन ।
काले-काले यह भीम भूत,
ये यन्त्र नही है कालदूत ।
है दहक रही भट्ठी धकधक ।
धूमिल काजल कढता भकभक ।
गलता लोहा, ढलते गाटर,
वे दैत्याकृति लम्बे अजगर ।
यह रौरव-ज्वाला से भीषण
उत्तप्त, दृप्त, प्रज्ज्वलित, अरुण
कैसा प्रकाश, इस्पात तरल—
है भरा कडाहो में झलझल ।
यू-बोट, टैंक, ये विध्वसक,
ये रॉकेट, ये विमानवाहक,

कुछ यहाँ खडे, कुछ वहाँ पडे
कुछ धरती पर, कुछ गगन चढे ।
हिलते भूधर, डोलती मही,
सभ्यता पुरातन काँप रही ।

वन गये कृषक सव कारीगर ।
आवाद होगये नये नगर ।
अव कहाँ गये वे कच्चे घर ?
अव कहाँ रहे वे सच्चे घर ?
वे गाँव नही, वे ठाँव नही ।
नर हार गया सव दाँव यही ।
छिप कहाँ गये वे नारी-नर ?
दुर कहाँ गये वे दृश्य अमर ?
तुम रच दो फिर से शिल्पिप्रवर !
अव वही चित्र धरतीतल पर—
'गोदी के घर, ऊपर छप्पर,
लौकी की वेलें चढी सुघर' ।

[६]

प्यार मैंने भी किया था।

बीत संवत्सर गये हैं।
किन्तु वे दिन तो नये है।
याद ताजी है हृदय में
जब प्रथम चुंबन लिया था।
प्यार मैंने भी किया था।

शेष सिहरन पुलक तन में।
गुदगुदी मधु-सिक्त मन में।
क्या भुला सकते युगान्तर
जो सरस जीवन जिया था।
प्यार मैंने भी किया था।

लौट आये फिर जवानी।
बहे गंगा वही पानी।
साध कहती दे चलूँ
सर्वस्व जो पहले दिया था।
प्यार मैंने भी किया था।

[७]

वह गया सरिते ! कितना पानी ?

बूँद-बूँद में ढलक गया री,
लहर-लहर मे छलक गया री;
धीरे-धीरे रीत गई सब
कैसे भरी जवानी !
वह गया सरिते ! कितना पानी ?

तन में सावन, मन में सावन,
जीवन यह धाराधर-धावन,
किस अलका की कौन विरहिणी
की यह मधुर कहानी ?
वह गया सरिते ! कितना पानी ?

शैशव बीता, यौवन रीता,
बिसर गई प्रिय की मधु गीता,
जब तब हरी भरी हो उठती—
मन की कसक पुरानी।
वह गया सरिते ! कितना पानी ?

इकतं

[८]

मेरे लिए न अश्रु वहाओ।

यह उपहार वेशकीमत है।
ऐसा कौन हमारा व्रत है ?
देवी का वरदान न सरले !
देखो, व्यर्थ लुटाओ।
मेरे लिए न अश्रु वहाओ।

नभ की चादर तनी रहे वस।
सेज भूमि की वनी रहे वस।
इतना क्या थोडा है मुझको
भूल सुनयने ! जाओ।
मेरे लिए न अश्रु वहाओ।

हरी दूव का मिले बिछौना।
इससे क्या सौभाग्य सलोना ?
फिर क्यो जीवन की रानी ! तुम
रह-रह हृदय जलाओ ?
मेरे लिए न अश्रु वहाओ।

[६]

प्यार है बन्धन तुम्हारा।

मत मुझे बाँधो सहेली।
इस विपथ में मैं पहेली।
अन्त मेरा पा सका है
क्या गगन का शुक्र तारा?
प्यार है बन्धन तुम्हारा।

एक उलझन में न भूलो।
मत सुनहरे पेंग झूलो।
कटको में कौन रस है,
क्या न तुमने यह विचारा?
प्यार है बन्धन तुम्हारा।

मै निरकुश मुक्त मानव।
छोह-छबि मेरे लिए कव?
नियत पथ अपना न बाले।
ध्येय का कोई किनारा।
प्यार है बन्धन तुम्हारा।

[१०]

जीवन के नन्हे नन्हे पग।

जल-थल, अवनी में, अम्बर मे,
वचपन-यौवन, मधु-पतझर मे,
द्रुत सरल-सरल चचल-चचल,
चल-चलकर खोज रहे वह मग।
जीवन के नन्हें नन्हे पग।

वह मार्ग कहाँ, विश्राम कहाँ ?
वह अन्तिम धाम ललाम कहाँ ?
हैं बिखर रहे हम जिसके कण
जगमग कर, ज्योतित कर अग-जग।
जीवन के नन्हे नन्हें पग।

फूलो पत्तो द्रुम डारो मे,
नभ के ज्वलन्त अगारो मे,
अकित है चरणचिह्न कितने
पर शोध कहाँ पाता जड खग ?
जीवन के नन्हें नन्हें पग।

[११]

बादल आसमान मे छाये।

मन में दुख की घटा घिरी है,
जीवन की यह एक झिरी है।
टपटप टपटप झहर झहर कर
वर्षा का जल आये।
बादल आसमान में छाये।

ऊपर जल है, भीतर जल है,
पडा बीच में प्राण विकल है,
तरल फुहारो को छू-छूकर
रोम-रोम थहराये।
बादल आसमान में छाय।

वर्षा थम जायेगी छन में,
किन्तु उमडते जो घन मन में,
उर-अन्तर में सदा रखेंगे
वे अपनी झर लाये।
बादल आसमान में छाये।

[१४]

प्रिये, कैसा सुरम्य ससार !

चुम्बनो का आदान-प्रदान,
भुजाओ का आलिगन, गान,
प्रेम के मधुर-मधुर आख्यान,
हृदय का मीठा-मीठा प्यार।
प्रिये, कैसा सुरम्य संसार !

आँसुओ का प्रवाह दिन-रात,
झरा करता ज्यो रजत-प्रपात,
स्नान-मज्जन से अति रमणीय,
नित्य रहता जीवन का द्वार।
प्रिये, कैसा सुरम्य ससार !

लगा है यहाँ विरह का रोग,
किन्तु फिर भी हताश क्या लोग ?
बहा कर प्राणो का उन्माद,
रही मरु में लहरा जलधार।
प्रिये, कैसा सुरम्य संसार !

[१५]
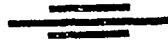
पुतले हैं हाड-मास के हम।

रहते हैं फिर भी दूर-दूर,
छू जायें न हा! इतना सम्हर
चिन्ता-सागर में डूब-डूब कर
भी कितने उथले हैं हम।
पुतले हैं हाड-मास के हम।

हम सन्ध्या-पूजन कर पवित्र,
वे जप-तप कर भी दुश्चरित्र,
हम ईश्वर के हैं भक्त निरे,
पर वे हैं प्रभु के पुण्य परम!
पुतले हैं हाड-मास के हम।

ईश्वर ईश्वर है इसीलिए,
मामी पतितो की सदा पिये,
अपने भक्तो के छूने में
होता उसका अभिमान न कम।
पुतले हैं हाड-मास के हम।

[१६]
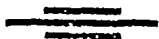
काम जीवन मे जतन का।

ज्वार मे जब बह गये हम,
हाथ खाली रह गये हम,
ले उतारें किस हृदय में,
भार मन का, प्यार मन का ?
काम जीवन मे जतन का।

ले किसे साथी बनायें ?
किस हृदय में मन रमाये ?
है न कोई पात्र ऐसा,
मोल समझे अश्रुकन का।
काम जीवन में जतन का।

मार्ग काँटो में वनाना,
शूल लेकर फूल छाना।
दुख-समय सुख सकलन का
यत्न है वर विज्ञजन का।
काम जीवन में जतन का।

हाय, दुख भी छोड भागा !

आँख में अब है न पानी,
हूक है दिल में न रानी !
मूक मन के भाव सारे,
दूर बैठे तोड तागा।
हाय, दुख भी छोड भागा !

प्यार ने जब मोह त्यागा,
रह गया जब मैं अभागा,
प्रेम-बन्धन ने उसी क्षण
तोड फेंका क्षीण धागा।
हाय, दुख भी छोड भागा !

आह ! वह मधुपान आली !
फिर न दोगी एक प्याली ?
जायेंगी ये बीत रातें,
दुख मिलेगा भी न माँगा।
हाय, दुख भी छोड भागा !

इकताल

[१८]

नभ के ज्योतित तारे।

सुख-दुख की गणना करते हैं,
जग-ज्वाला में जल मरते हैं—
क्या उन दुखियो की आहो के
ये जलते अंगारे ?
नभ के ज्योतित तारे !

इतनी दूर शून्य मे प्रोज्ज्वल,
दहक-दहक उठते है जल-जल,
किसके आलिगन को आतुर
रहते वाहु पसारे ?
नभ के ज्योतित तारे !

कुछ विषाद-सा इनके मन में
घनीभूत हो उठा गगन में ?
उसकी छाया से ये झिलमिल
झिलमिल कर-विस्तारे ।
नभ के ज्योतित तारे !

[१९]
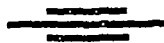
आज कितनी प्यास तन मे !

ओठ सूखे, कठ सूखा,
शुष्क जीवन, प्यार रूखा,
बीत जब पावस चला है,
कौन-सी अब आस घन मे ?
आज कितनी प्यास तन में !

झर न लगती है नयन में,
स्वेद उड जाता पवन मे,
तूल-सा मै तुल रहा हूँ
प्रेम के इस कुज-वन में।
आज कितनी प्यास तन में !

वह रहा वातास सन-सन
कह रहा—तू सूख कन-कन।
है कहाँ वे घन-सरित दें
सींच हिम-जल तप्त मन में।
आज कितनी प्यास तन में !

रोना ही तो शेष यहाँ रे।
मरन-विछोह विशेष यहाँ रे।

जीवन के प्रासाद मनोहर
सिसक रहे है होकर जर्जर,
मधुर-मिलन की दो घड़ियो में,
आँसू का सदेश यहाँ रे।
रोना ही तो शेष यहाँ रे।

सन्ध्या का कर्णफूल पहने
आई थी जो मन की कहने
मदिर की पावन प्रतिमा-सी
उस रगिणि का वर वेश कहाँ रे।
रोना ही तो शेष यहाँ रे।

मधु-शेष हुई मादक साँसें,
मन की भी आज शिथिल रासें,
परिमल समीर के साथ गया
उसका न रहा लवलेश यहाँ रे।
रोना ही तो शेष यहाँ रे।

[२१]

आज जीवन का सवेरा।

आसमान प्रभानुरंजित,
भूमि का स्वर गान-गुंजित,
तरु-लता-तृण-घास-पल्लव
में पुलक का है बसेरा।
आज जीवन का सवेरा।

झर रहा है हेम दिनकर,
क्षीर ढलता शैल-निर्झर,
आज कण-कण में जगत के
है किसी ने प्राण प्रेरा।
आज जीवन का सवेरा।

हो रहा संगीत घन में,
बाँसुरी बजती विजन में,
मूक शंबुक-शुक्तियों में
भाव किसका, गीत मेरा ?
आज जीवन का सवेरा।

[२२]

हाय, कितनी आग तन मे !

थम गये आँसू नयन मे,
सूखकर उच्छ्वास मन में
उड़ गई जाने कहाँ होकर
हृदय की भाप घन में ?
हाय, कितनी आग तन मे !

रोम-रोम अँगार जलता,
मोम होकर जी पिघलता,
आज होली हो रही है
वेदना की तन-बदन में।
हाय कितनी आग तन में !

जल गया जो कुछ बचा था।
गल गया जो कुछ रचा था।
शेष केवल रह गई है
प्रलय की खर ज्वाल मन में।
हाय, कितनी आग तन में !

[२३]

रो रहा है गान मेरा।

ताल-स्वर में सिसकियाँ हैं।
बोल-गति में हिलकियाँ हैं।
विकल क्रदन मे विकम्पित
हो रहा है प्राण मेरा।
रो रहा है गान मेरा।

साँस में रोता पवन है,
बाँस में रोता विजन है,
आँसुओ मे आज मुँह को
धो रहा अभिमान मेरा।
रो रहा है गान मेरा।

सार यौवन में कहाँ है ?
सार जीवन में कहाँ है ?
सार तो केवल रुदन मे
पा रहा मन आण मेरा।
रो रहा है गान मेरा।

उर-अन्तर मे आज हमारे

एक हूक उठती है रह-रह
उस दिन की सुधि प्राणो में बह
अंकित करती है अतीत-
जीवन-सरिता के कूल-कगारे।
उर-अन्तर में आज हमारे।

सुलग सुलग उठती है सोई
आग जलाकर दीपक कोई
शून्य कक्ष के अन्तराल में
आलोकित करता दर-द्वारे।
उर-अन्तर मे आज हमारे।

इन आहो में दाह प्रमुख है,
किन्तु दाह में भी तो सुख है,
सुख की मृदु रेशम-डोरी में
गुंथे हुए है आँसू खारे।
उर-अन्तर में आज हमारे।

[२५]

दो घड़ियो का रैनबसेरा,

मेरी-तेरी राह अलग है,
यह मेरा, वह तेरा मग है,
मार्ग-मिलन की मधु घड़ियो मे
कर हँस-बोल सवेरा।
दो घड़ियो का रैनबसेरा।

जुगनू से दो पल आलोकित,
छवि से मानस-मूल सुशोभित,
क्षणिक प्रभा से पूर्ण हृदय मे
व्यापक एक अँधेरा।
दो घड़ियो का रैनबसेरा।

हँस ले कुसुम वृन्त पर अपने,
देख-भाल ले वे सुख-सपने,
यह शबनम बटोर ले जाने
को आतुर है सहज सवेरा।
दो घड़ियो का रैनबसेरा।

[२६]

जीवन में एक हिलोर प्रिये !

है उमड रही अन्तरतर से।
उठती है वह किस गह्वर से ?
सागर-मथन से ज्वार उमड
भरती है भीषण रोर प्रिये !
जीवन में एक हिलोर प्रिये !

उसमें बिजली की लरज-तरज,
उसमें बादल की भीम गरज,
उसमें मानस का अमृत-गरल
मिल, रहा खूब हलकोर प्रिये !
जीवन मे एक हिलोर प्रिये !

ये कूल-करारे टूट-टूट
गिरते, लख साहस रहा छूट
कैसा प्रचड रेला है री !
देगा भूमडल बोर प्रिये !
जीवन में एक हिलोर प्रिये !

[२७]

वे पल अमर हुए जीवन मे ।

मिले भरत से राम हृदय लग,
सजल आँसुओ से गीले पग,
लेकर अपने चित्रकूट में
सुखी नित्य मानव था मन में ।
वे पल अमर हुए जीवन में ।

शोणित पान सहोदर का कर,
खड-खड कर पितृ-हृदय घर,
सिंहासन-लिप्सा में अन्धा
सभ्य मनुज कैसे इस तन में ?
वे पल अमर हुए जीवन में ।

दैन्य दुखी रोता है मग में,
सैन्य-सुखी सोता पड जग मे,
मानव पर दानव को विजयी
देख सुखी कालानल मन में ।
वे पल अमर हुए जीवन में ।

[२८]

वेदना मानस में है जडी।

मुझे आती अतीत की याद,
याद में कितने दुसंवाद!
मिटाने को मन का अवसाद,
जानती हूँ मैं जो जो गीत
कभी गा लेती हूँ दो कडी।
वेदना मानस में है जडी।

कहाँ अधरो का चुबन प्यार,
कहाँ आलिगन का उर-भार
सुनहला कहाँ गया संसार?
आज जलती जीवन में आग,
आग में मीन तुल्य मै पडी,
वेदना मानस में है जड़ी।

आज ज्वाला मे भी आनन्द,
रुदन हो कढता नव नव छन्द,
आँसुओ का पी पी मकरन्द,
कर रही हूँ जीवन-जग धन्य
प्रेम-सरिता के तट पर खडी।
वेदना मानस में है जडी।

[२६]

कैसी कुलीनता, कैसा बल !

सब एक राख से बने हुए,
सब एक ज्योति के जने हुए,
इतना वैषम्य, असम अतर,
कोरी विडवना, कोरा छल !
कैसी कुलीनता, कैसा बल !

तुमको धरती पर ठौर नही,
हमको खाने को कौर नही,
तुम भी जीते, हम भी जीते,
भर भर जीवन में अमृत-गरल,
कैसी कुलीनता, कैसा बल !

है रग-रूप का भेद कहाँ ?
तो भी भव-भावाभेद कहाँ ?
है छेद रहा यह शूल हूल
लख दीनहीन कुछ शक्ति सवल ।
कैसी कुलीनता, कैसा बल !

कुछ भरे और कुछ रीते हैं,
कुछ मधु कुछ आँसू पीते हैं,
क्या कालकूट के साथ-साथ
मिलकर बहता है गगाजल !
कैसी कुलीनता, कैसा बल !

झोपडियाँ जिनमें फूस नही,
अपने वैभव पर रूस रही,
गाते-गाते रँगरलियो में
भूले अपनापन रंगमहल।
कैसी कुलीनता, कैसा बल !

दुख को सुख का सहयोग नही,
रोगी को यह सब भोग नही,
दो भागो में बँट गया जगत,
कुछ पीन-प्रबल, कुछ हत-निर्बल।
कैसी कुलीनता, कैसा बल !

फैला जो यह भूमडल पर,
क्या इस सबका कर्ता ईश्वर ?
क्या मानव का कर्तृत्वजाल
ही नही रहा है उसे कुचल ?
कैसी कुलीनता, कैसा बल !

कंधे से कधा जोड-जोड,
निज-निज स्वार्थों को छोड-छोड,
क्या गले नही मिल सकते है
निबलो-सबलो के दोनो दल ?
कैसी कुलीनता, कैसा बल !

रख हाड-मांस को पास-पास,
तुल सकते जो दोनो सहास,
बहती जीवन में एक सांस
ढुल जाता सब वैषम्य-गरल,
कैसी कुलीनता, कैसा बल !

[३०]

रोटी को तरस रही दुनियाँ,

हम नही चाहते दूध-दही,
माखन मिश्री अब कहाँ रही ?
भूखो-नगो से दीन-दुखी
आँसू नित बरस रही दुनियाँ।
रोटी को तरस रही दुनियाँ।

ककड-पत्थर की शैया है,
जीवन की डगमग नैया है,
आशा का झीना पाल लिये
झझा से झुलस रही दुनियाँ,
रोटी को तरस रही दुनियाँ।

बूँदो मे रक्त रहा तन मे,
अवशेष कहाँ धीरज मन मे ?
ककाल-शेष-सा वेश किये
करुणा से सरस रही दुनियाँ !
रोटी को तरस रही दुनियाँ।

[३१]
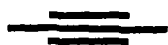
माना, वह एक कहानी है।

थी सत्य एक दिन जीवन मे,
बंधकर उसके भुज-बंधन मे,
हम भूल गये थे हाय ! कि
यह सरिता का बहता पानी है।
माना, वह एक कहानी है।

कब स्वर्ग-मोक्ष समझे हमने ?
पाये कब अन्य विषय जमने ?
उन लाड-प्यार की घडियो की
आँसू बस एक निशानी है।
माना, वह एक कहानी है।

पर स्वप्नो का क्या मोल नही ?
क्या साँसो की कुछ तोल नही ?
छलना ही वह सही किन्तु
हमने यथार्थ कर जानी है।
माना, वह एक कहानी है।

[३२]

हम हरवाहे, चरवाहे है।

खेतो में है परिचय अपना,
ढोरो में है सचय अपना,
सपना सबको लगता है जो
हम उसी सिन्धु को थाहे है।
हम हरवाहे, चरवाहे है।

गोडते-जोतते नित्य मही,
सपत्ति हमारी दूध-दही,
कितने कष्टो के बाद आज
हमने जौ-गेहूँ गाहे है!
हम हरवाहे, चरवाहे हैं।

श्रम में अपने दीपावलियाँ,
हाथो से झरती फुलझडियाँ,
हम वसुधा के वरदान सदा;
युग-युग-द्वारा हम चाहे है।
हम हरवाहे, चरवाहे है।

[३३]
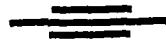
हम आज कहाँ के कहाँ गये !

हल-बैल लिये हम आये थे,
धरती ने पलक बिछाये थे,
जो पुरस्कार में मिले हाय,
नभ के वे मोती कहाँ गये ?
हम आज कहाँ के कहाँ गये !

सरिता का जल पीनेवाले,
वनखड-बीच जीनेवाले,
छल-छदो से क्या काम हमें
सुख-चैन जहाँ थे नित्य नये।
हम आज कहाँ के कहाँ गये !

फल-फूल देख पुलकित होते,
सहचर थे पर्वत के सोते।
हम पर्णकुटी के अधिवासी,
हम देवो के उल्लास नये।
हम आज कहाँ के कहाँ गये !

उनस

रैनबसेरा

हम नगरो-महलो के वन्दी,
ककालशेष हम दुख-द्वन्दी,
अभिशाप्त-तप्त हम नरक-कीट
इस पाप-पक में नहा गये।
हम आज कहाँ के कहाँ गये !

चाह ककड के हृदय में।

घास, तृण, तरु, पुष्प, पल्लव,
कुसुम-कोमल, कटकित दल,
चाह से ही जी रहे हैं,
इन दिनो में—इस समय में।
चाह ककड के हृदय में!

पत्थरो में चाह सोती,
खँडहरो में आह रोती।
उर उरो से लग रहे है
चाह की उन्मत्त वय में।
चाह ककड के हृदय मे।

यह जगत जड और मृत है,
चाह जीवन है—अमृत है।
सूर्य, शशि, उडु, अवनि, अंबर
है जडे सब कर-वलय में।
चाह ककड के हृदय में।

इकस

है न जीवन्मुक्त ही यह,
राग-रोष विमुक्त ही यह,
भाग्य-पथ पर है पडा
दुख-दाह लेकर यह प्रलय में।
चाह ककड़ के हृदय में।

यह पद-ध्वनि का पुजारी,
प्यार का सर्वाधिकारी,
जडभरत होकर समाधि-
निमग्न बैठा कौन लय में?
चाह ककड़ के हृदय में!

क्यो इसे ठुकरा रहे हो?
यह दुखी, तुम गा रहे हो?
क्रूरता इतनी तुम्हारे आह
निर्मम! चरण-द्वय में?
चाह ककड के हृदय में!

जो राजा थे वे रक हुए।

कब्रें वीरो को लील गई।
खँडहर में मिल तहवील गई।
जो सरसिज थे सर में फूले
वे गिर पैरो मे पक हुए।
जो राजा थे वे रक हुए।

अरमान हृदय में शेष रहे।
जो थे वे क्या अब वेश रहे।
अपने शशि मे तो हमी हाय!
निष्कारण अधम कलक हुए।
जो राजा थे वे रक हुए।

मधु पी-पीकर आँसू पीना,
भिखमगो का जीवन जीना,
हा, स्वर्ण-रश्मि से खचित-रचित
वे कहाँ भाल के अक हुए?
जो राजा थे वे रक हुए।
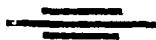
[३६]

भार दिल में है न थोडा,

आंख में आंसू खडे हैं,
पैर मे छाले पडे हैं,
मूढ मन ने, प्यार से,
क्यो जानकर सबब जोडा।
भार दिल में है न थोडा।

मधुर सुधि का दश लेकर,
जी रहा हूँ अश्रु सेकर,
टीस उठता है हृदय में
बन रहा जो एक फोडा।
भार दिल में है न थोडा।

शेष सबल हो गया है,
धैर्य भी ध्रुव खो गया है,
देह का यह धर्म भी तो
चाहता अब साथ छोडा।
भार दिल मे है न थोडा।

[३७]

यह मार्ग कहाँ को जाता है ?

हम चलते-चलते हार गये,
तो भी क्या सागर पार गये ?
दोनो कूलो के मध्य मनुज
जीवन-तरणी लहराता है।
यह मार्ग कहाँ को जाता है ?

इसका है ओर-न-छोर कही,
इसमें लहरे हलकोर रही,
अब-तब डूबे का भाव मात्र
ही मन में आता-जाता है।
यह मार्ग कहाँ को जाता है ?

साथी-सगी सब क्षण भर के,
यौवन-मधु बूँद-बूँद ढरके,
बीता प्रभात—मध्याह्न गया,
सध्या से किसका नाता है ?
यह मार्ग कहाँ को जाता है ?

[३८]

जीने का है अधिकार किसे ?

नंगे भी हैं, भूखे भी हैं,
दुख सह सह कर सूखे भी हैं,
ऐसी भी है चक्की कोई
जिसमें हम पहली बार पिसे ?
जीने का है अधिकार किसे ?

भगवान हमें जो भूल गये,
रह चुनने को बस शूल गये,
मिट सकते हैं क्या वज्र-लेख
जो मानव सौ-सौ बार घिसे ?
जीने का है अधिकार किसे ?

संसृति की इच्छा से प्रेरित,
रहता है मानव का नित चित,
अन्यथा कभी का पा जाते
कहते जीवन का सार जिसे।
जीने का है अधिकार किसे ?

रात कैसी है अँधेरी !

बुझ गये दीपक भवन के,
हैं कहाँ तारे गगन के ?
एक काजल की घटा ने
आज सारी सृष्टि घेरी !
रात कैसी है अँधेरी !

किन्तु अन्तर में हमारे,
जग रहे अगणित सितारे,
कर-किरण अभिनव पसारे
दे रहा है चन्द्र फेरी।
रात कैसी है अँधेरी !

आज अन्तर से जगायें
वाह्य जग को, फूल छायें
लग रही है जहाँ तीखे
कटको की एक ढेरी !
रात कैसी है अँधेरी !

[४०]

मरु मे सजल भूमि सोती है।

उर से लग कर, गले लिपट कर,
प्राणो के अचल से सट कर,
ताप-तप्त अभिशप्त हृदय-तट
छलछल मधु-सरिता धोती है।
मरु मे सजल भूमि सोती है।

मानस की दावानल से गल,
मानिक-मदिरा-सी वह उच्छल,
जीवन-पथ की विभ्रान्ति-श्रान्ति
सब उसकी सुधा-बूंद खोती है।
मरु मे सजल भूमि सोती है।

ससृति की निस्तब्ध निशा मे,
जीवन की चिर-मौन दिशा में,
सजल मोतियो की तृण-तरु पर
मन्द-मधुर वर्षा होती है।
मरु में सजल भूमि सोती है।

खोजती किसको सहेली ?

दूर घर है प्राणधन का,
मार्ग-टेढा वन-विजन का,
साँझ की वेला, दिशाएँ
मौन, तुम फिरती अकेली !
खोजती किसको सहेली ?

प्राण क्यो बेचैन आली,
क्या पडी इतनी उताली ?
ढूँढने जाती मधुप को
क्या कभी चलकर चमेली ?
खोजती किसको सहेली ?

लाल होगे गाल रानी
जब उषा के, दुख-कहानी
आ सुनेंगे प्राणवल्लभ,
फिर वढाकर प्रेम-वेली ।
खोजती किसको सहेली ?

[४२]

भाग्य-शिला पर कर्म-लेख बन,
अंकित हैं जीवन के अगकन,
व्यक्त हो उठा है मानव-मन,
खिची युगो के वक्षस्थल पर
संस्कृति की विधुलेखा!

नव नव रगो, नव रूपो में,
नभ-चुबी उच्चस्तूपो में,
ध्वस्त खँडहरो मे, कूपो में
प्रचुर सभ्यता की ईंटो में
कढी विश्व की रेखा।

ये लघु-गुरु पद-चिह्न निरन्तर,
बनते-मिटते हैं जीवन भर,
शिल्प-कल्प हो उठते भास्वर,
इन चित्रो में झाँक रही
किस अमर दृश्य की रेखा?

इसमें जीवित है मन्वन्तर,
साँसें सतयुग, त्रेता, द्वापर,
इसके निर्माता मानव-कर,
सुषमा की इस रम्य राशि का
स्वर्ण स्वप्न-भर देखा।

आर्य, हूण, मगोल, यवन दल,
सबकी अजलि का शीतल जल,
द्रविड, सुमेरो का कल कौशल,
सर्ग-देवता के चरणो में
चढा यही पर देखा !

[४४]

यह पर्णकुटी शाला मेरी ।

जीवन-कंपन से यह सजीव,
प्राणों पर इसकी उठी नींव,
इसमें कर रुनुक-झुनुक फिरती
मेरी प्रेयसि, बाला मेरी ।
यह पर्णकुटी शाला मेरी ।

इसमें रम्भा का रूप भरा,
इसकी प्रिय पुण्य पवित्र धरा,
इसके आँगन मे वही ढलक कर
यौवन की हाला मेरी,
यह पर्णकुटी शाला मेरी ।

इसके कण-कण में प्यार-पुलक,
इसके तृण-तृण मे अश्रु छलक,
इसकी साँसो से गुँथी हुई
है सपनो की माला मेरी ।
यह पर्णकुटी शाला मेरी ।
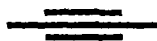
[४५]

सागर में जल थोडा,

गिनी हुई जीवन में साँसें,
मन-ताजी की चचल रासें,
छूट जायगा कहाँ, सग
अब तक न हाय जो छोडा,
सागर में जल थोडा।

मीन ! मधुर सबध तुम्हारा,
तुमको यह मीठा जल खारा,
वागुर-वध महा सन्मुख
तुमने न कही मुख मोडा,
सागर में जल थोडा।

फूलो के क्षण बिसर चले री !
भीतर-भीतर हृदय जले री !
बूँद-बूँद कर छीज चला
जो चाह-चाह कर जोडा।
सागर में जल थोडा !
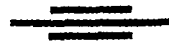
[४६]

सन-सन बहता रे आज श्वसन,

वह पटक रहा है अगणित फन,
किस क्रूर दुष्ट पर रुष्ट हुआ
उमडा पडता है उसका मन !
सन-सन बहता रे आज श्वसन !

वह सरीसृपो-सा रेंग चला,
लेकर प्राणो में कौन बला ?
फूत्कार रहा फम् फम्, फेनिल
लावा-सा ढरता ज्वलितानन।
सन-सन बहता रे आज श्वसन !

बेचैनी में वह डूब रहा,
यह हरी-हरी-सी दूब अहा,
क्या शान्त कभी कर पायेगी
अन्तर में जो हो रही जलन ?
सन-सन बहता रे आज श्वसन !

[४७]

कुछ अनहोनी-सी घटना है।

पत्थर से सरिता फूट पड़ी,
नीरद में विज्जु-छटा उमड़ी,
उर्मिल सागर में वह्नि-शिखा,
चातक में व्याकुल रटना है।
कुछ अनहोनी-सी घटना है।

भूचालों पर धरती बसती,
अंबर में चन्द्रकला हँसती,
हिम जला रहा है तृण-तरु को
जलधारा से पवि कटना है।
कुछ अनहोनी-सी घटना है।

करुणा का गीला एक चरण,
काफी है भरने को उर-व्रण,
इस दुनियाँ में रवि-किरणों से
जीवन का पादप अँटना है।
कुछ अनहोनी-सी घटना है।

खँडहर की आँखो में पानी।

सम्राटो के पगतल चूमे,
अनगिन तुरी-मतगज झूमे,
लचक लचक कर चली यहाँ
कितनी भूमडल की रानी ?
खँडहर की आँखो मे पानी !

वे प्रसून-कोमल-दल वाला,
उन मुखडो का रूप-उजाला,
चल पद-मुखर-नूपुरो की
अब कहाँ हाय वह वाणी !
खँडहर की आँखो में पानी।

प्रणयरूप यौवन की हाला,
पी-पीकर मधु जग मतवाला,
बसा हुआ था यही शेष
क्या उसकी आज निशानी ?
खँडहर की आँखो में पानी।

सिंहपौर वे सौध अनोखे,
अभ्रंकष वे अट्ट-झरोखे,
झाँक रहे थे दिगदिगन्त में
सबकी शेष कहानी।
खँडहर की आँखों में पानी!

[४६]

गिरि से गिर जलधारा।

उर की व्यथा, हृदय की ज्वाला,
जीवन का कटु कष्ट-कसाला,
लेकर बहती तरल तीव्र-गति
फोड शैल की कारा।
गिरि से गिर जलधारा!

प्रलय बद पाषाण-खड में,
अन्तर्ज्वाला वेग चड में,
उमड-घुमड घन-मन्द्र भीम रव
खनती कठिन कगारा।
गिरि से गिर जलधारा!

एक आग अचल से छाये,
सजला यह तरला बन धाये,
हर-हर घहर-घहर घहराये
घर हलचल से सारा।
गिरि से गिर जलधारा!

ओ स्वतन्त्रता के दीवानो !
इस हरहर का स्वर पहचानो,
कँपा शिलोच्चय को वह निकलो
झुके धरणिवर भारा,
गिरि से गिर जलधारा !

[५०]

चित्र प्रिय, ऐसा बनाओ।

धूप भी हो, छाँह भी हो,
प्यार की गलवाँह भी हो,
प्रेम की नदियाँ बहाकर
शोक के बादल घिराओ।
चित्र प्रिय, ऐसा बनाओ।

फूस की कुटिया, विजन थल,
चिरसमाधि निमग्न अविचल
एक मानवमूर्ति गढकर
आँसुओ मे फिर गलाओ।
चित्र प्रिय, ऐसा बनाओ।

वचिता की रिक्त झोली,
नववधू को रक्त-रोली,
दृश्य जीवन का समूचा
एक ही पट पर बिछाओ।
चित्र प्रिय, ऐसा बनाओ।

अश्रु भी हों, हास भी हो,
चण्ड ताण्डव, लास भी हो,
एक तूली में प्रियवद !
ले सभी तुम रंग आओ।
चित्र प्रिय, ऐसा बनाओ।

[५१]

सब कुछ तो सपना ही सपना ।

मिटने को यह यौवन अपना,
मिटने को री जीवन अपना,
मिटने को धाम-धरा सारे
मिटने को दिनकर का तपना ।
सब कुछ तो सपना ही सपना ।

तो भी तुम अपना ही अपना,
माने बैठी नवनीत-मना,
जो देख रही हो अवुधि को
देखो लहरो का भी कँपना ।
सब कुछ तो सपना ही सपना ।

तरु डोल रहे हैं जिस भय से,
गाते पक्षी है जिस लय से,
सबकी उस नश्वरता का री
है मंत्र विश्व भर को जपना ।
सब कुछ तो सपना ही सपना ।

[५२]

जीवन के वे मधु-क्षण आली !

अंबर के उर में तारा बन,
निरखा करते हैं साश्रु नयन,
अरमानों की समाधि अपनी
चिरमौन जहाँ की रखवाली !
जीवन के वे मधु-क्षण आली !

वे ओस-बूँद हिमगात तरल,
झलमल झलमल, छल-छल, छल-छल,
तृण तरु हरियाली में हिलमिल
रँगते संस्मृतियों की जाली,
जीवन के वे मधु-क्षण आली !

रत्नों की लूट यहाँ होती,
जग चुगता, मैं फिर-फिर बोती,
मेरी खेती में फूलों की
आई बहार, छाई लाली।
जीवन के वे मधु-क्षण आली !

---

[५३]

है भिन्न सदा जग का आशय।

यह कहता हो जब प्यार करो,
तो अच्छा हो सहार करो,
अन्यथा यही कह 'पाप-पाप'
उच्चस्वर से देगा परिचय।
है भिन्न सदा जग का आशय।

इसके जीवन की जो गीता,
रस झूम-झूम जिसका पीता,
उसको ही यह बदनाम करे,
उसको पुकारता यही अनय।
है भिन्न सदा जग का आशय।

यह सोमपान कर मन्त्र पढे,
यह सामगान कर उच्च चढे,
यह कलाकुशल बन नाट्य करे
यह रहता है नित उच्चाशय।
है भिन्न सदा जग का आशय।

पर नृत्य, गीत, रसपान देख,
कुंचित होती भ्रू-चक्र-रेख,
जल उठता इनका रोम-रोम
बढ़ती उससे ज्वाला दुर्जय।
है भिन्न सदा जग का आशय।

कृतकर्मों को कह पुण्य-धर्म,
रहता है रक्षित पहन वर्म,
दुष्कर्म, पाप कहकर सबका
भेदन करता है मर्म-हृदय।
है भिन्न सदा जग का आशय।

गौरव, कुलीनता, धन-जन-बल,
इनसे है यह जग पुष्ट-प्रबल,
इसकी आँखों का कंटक बन
जीता है एक निरीह-निलय।
है भिन्न सदा जग का आशय।

तुम बनो दहकता अंगारा,
तुम बहो प्रवाह प्रबल-धारा,
तुम झंझाकृत तूफान बनो,
हो महागर्त अवरुद्ध हृदय।
है भिन्न सदा जग का आशय।

काँपे धरती, डोलें भूधर,
बुझ जायें प्रचंड किरण भास्कर,
इस रुद्रनृत्य में दुनियाँ के हो
पाप-पुण्य का फिर निश्चय,
है भिन्न सदा जग का आशय।

[५४]

घन मे, वन में, मौन विजन में,
जीवन मे, कन-कन में, मन मे,
कौन भरा करता है मधुघट,
रीते करता है फिर छन मे ?

जल मे, थल में औ समतल मे,
पल-पल के आकुल हृत्तल में,
कौन ज्वार-सा उठ उठ कर
फिर बनता है भाठा प्रतिपल मे ?

मधु-सौरभ में, पुष्प-हास मे,
वासन्ती यौवन-विलास में,
प्राणो का सगीत फूँक कर
कौन चिता रचता है मग में ?

रसमय, विषमय, जन्म मृत्युमय,
सुख यौवनमय, जीर्णजरामय,
कौन किया करता है अकित
नव नव दृश्य नये मधुवन में ?

[५५]

क्यो रोते है श्रृगाल वन मे ?

है जहाँ शिवा का साथ सदा,
प्रिय प्रकृति मोहनी फल-प्रदा।
क्या महलो मे जा वसने की
इच्छा होती उनके मन मे ?
क्यो रोते है श्रृगाल वन में ?

वे नही जानते मानव को,
उस हिस्र क्रूर-कर दानव को।
जिसके अपने ही स्वजन ग्रास
होते है क्षुद्र प्रलोभन मे।
क्यो रोते है श्रृगाल वन मे ?

सुन पडता कुछ सगीत उन्हें।
होता कुछ लोभ प्रतीत उन्हे।
वे क्या जानें ईंटें-पत्थर तक
सिसक रहे मन ही मन में।
क्यो रोते है श्रृगाल वन में ?

मनु की इस संतति से संतत,
कंपित रहती महलों की छत,
जो शील-धर्म को पाप-पीठ पर
बलि कर देता है छन में।
क्यों रोते हैं शृगाल वन में?

मानव यह ईर्ष्या-योग्य नहीं।
ये धवल-धाम उपभोग्य नहीं।
ये पाप-ताप में डूब रहे
अभिशाप रचाये कन-कन में।
क्यों रोते हैं शृगाल वन में?

क्या सुन्दर वन की हरित धरा!
क्या ही सर निर्मल नीर-भरा!
कैसा उन्मुक्त समीर यहाँ
बहता भौंरों के भनभन में।
क्यों रोते हैं शृगाल वन में?

[५६]

मानव तो कच्चा धागा है।

सह सके काल का कर-स्पर्श,
पा सका कहाँ यह समुत्कर्ष,
पल-पल के बधन में बन्दी
जीवन भी एक अभागा है।
मानव तो कच्चा धागा है।

विश्रृंखल यह, क्षणभगुर यह,
बढ सका अभी दो अगुर यह,
है शेष पडा विस्तार अगम,
निस्तार कहाँ जो माँगा है ?
मानव तो कच्चा धागा है।

छूने को शाश्वत प्राणो को,
वह सूँघ रहा सब घ्राणो को,
वह कस्तूरी-कण कहाँ भयाकुल
फिरता जिसको भागा है ?
मानव नो कच्चा धागा है।

[५७]

मेरी रानी अगूरलता !

वह मदन-भस्म से बनी हुई,
वह छवि-सुषमा की छुईमुई,
पर आसमान की चादर के
नीचे सोती ले निश्चलता।
मेरी रानी अगूरलता !

परियों ने जिसके पग परसे,
छूकर जिसको अशोक सरसे,
उसकी समाधि पर आँखों से
आँसू तक मुश्किल से झरता।
मेरी रानी अगूरलता !

जिसकी विभूति का अन्त न था,
छवि का उपमान वसन्त न था,
वह फूल-सेज को छोड़ आज
कंकड़-पत्थर पर है शयिता।
मेरी रानी अगूरलता !

वानन

हैं आज रेशमी वस्त्र कहाँ ?
चितवन के तीखे अस्त्र कहाँ ?
युवको के हृदय छेद डाले
वह कहाँ प्रिये ! तव चचलता ?
मेरी रानी अगूरलता !

तुम चिर दिन तक विश्राम करो,
तुम निर्जन मे आराम करो,
इस जीवन का परिणाम यही,
यौवन—फिर उसकी नश्वरता !
मेरी रानी अगूरलता !

[५८]

आज अपने अश्रु खारे !

मधुर मृदु मधु-पान कर भी
रूप-रस मे स्नान कर भी,
प्यार की घडियाँ जिया मे
चुम्वनो के ही सहारे !
आज अपने अश्रु खारे !

सब कहें यह क्या वला है ?
नोन शर्वत में गला है !
कौन घन से मिल उदधि-जल
छोडता है ये फुहारे !
आज अपने अश्रु खारे !

भाग्य एक विडबना है,
प्रेम कोरी कल्पना है,
आज है सो कल नही है
पेड सरिता के किनारे।
आज़ अपने अश्रु खारे !

मगन जीवन-तट हुए हैं,
पूर्ण भर-भर घट हुए हैं,
किन्तु इनमें स्वाद कैसा
जो अमृत के हैं दुलारे।
आज अपने अश्रु खारे।

[५६]

हम, उर-अन्तर के छाले।

एक आह में फूट पड़ेंगे,
मन की लेकर व्यथा जड़ेगे
स्मृति-पट पर सहज-सरल-गति,
लाड-प्यार से पाले।
हम, उर-अन्तर के छाले!

हम आख्यान सुखद जीवन के,
हम समाधि-थल मधुर-मिलन के,
हमने इस कोमल काया मे
सरस रग-रस ढाले;
हम, उर-अन्तर के छाले।

करते नित हम मधुपान रहे,
जीवन-भर गाते गान रहे,
छिल जाय न कोमल गात कही
हम रहते है दुख पाले।
हम, उर-अन्तर के छाले।
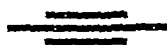
[६०]

झिलमिलाता साध्यतारा।

दीप रजनी ने सँजोया
या दिवस दुख-अश्रु रोया?
रश्मि-पट से पोछकर मुख
थाम अचल का किनारा।
झिलमिलाता साध्यतारा।

कुछ हृदय में वेकली है,
रश्मि परिचय ले चली है,
पर असीम अगाध अवर
में कहाँ उसको सहारा?
झिलमिलाता साध्यतारा।

क्षुद्र भी है, दीन भी है,
विश्व यह निस्सीम भी है,
एक भी तो बूँद इसकी
है नही यह अश्रुधारा!
झिलमिलाता साध्यतारा।

कुछ मधुर और कुछ खारा रे !

रख रख कर ये मृदु मन्द चरण,
करने चलती हैं किसे वरण ?
मन की कटु-कोमल सस्मृतियाँ,
जीवन की कलकल धारा रे !
कुछ मधुर और कुछ खारा रे !

घुल गये अमित मिश्री के कण,
शूलो-फूलो के रसमय क्षण,
वरदानो से है पुण्य परम
अभिशापो की यह कारा रे,
कुछ मधुर और कुछ खारा रे !

प्रस्तर-कठोर मानव जीवन,
कोमल करुणा के रुग्ण चरण
चिह्नित हैं पग पग पर किसने
यह दुख-सुख-भार उतारा रे !
कुछ मधुर और कुछ खारा रे !

[९२]

दुख से जर्जर, अभाव-रीती,

मानवता भू-लुठिता आज,
त्यागे सस्कृति के साज-बाज,
नयनो में शील-सुधा न लाज,
अश्रान्त अघम नर्तन में रत,
लेकर विडबना कटु-नीती।
दुख से जर्जर, अभाव-रीती।

प्राणो का मधुरसपान किये,
जीवन-गगा में स्नान किये,
गौरव-अतीत परिधान किये,
वे कला-कलश अनुपम निधियाँ,
ध्वसावशेष होकर जीती।
दुख से जर्जर, अभाव-रीती।

पूँजी-साम्राज्य, दैत्य-दानव,
सकुचित दलित विगलित मानव,
आहें आहत प्राणो का रव,
धरती पर नरकलोक रचती,
वे हाहाकार-गरल पीती।
दुख से जर्जर, अभाव-रीती।

हैं सिसक रहे आँसू के कण,
हैं सुबुक रहे जीवन के क्षण,
वरदान बनें तो भी यह व्रण,
जो निकल पड़े उर-पत्थर से,
सरिता कल्याण-सुधा पीती।
दुख से जर्जर, अभाव-रीती।

[६३]

हम नदी के दूरवर्ती कूल।
वे मिलन के रम्य क्षण अब क्यो न जायें भूल ?
यह विरह का नीर विषम प्रवाह,
है न इसमें राह और न थाह,
बस हृदय में है घुमडती आह !
एक तन-मन-प्राण थे वे आज हैं प्रतिकूल।
हम नदी के दूरवर्ती कूल।

फूल चुन चुन कर गुहे थे, हो गये वे शूल !
तीव्र सुधि का दश, निशि-पल हो रहा दुख-मूल।
कौन अब हमको मिलाये प्राण !
शेष हैं ना वे सुरीले गान।
हार-सी है धार बहती एक,
है भँवर जिसमें अनेकानेक।
खोल दो, हाँ खोल दो वह मधुर आलिंगन प्रिये !
तुम उधर, हम इधर डोलें बस शिथिल चुंबन लिये।
चाँदनी की रजत-साडी में दुराना गात,
सह सकेगा अब न भव्य प्रभात,

वेकली की विषम कालीरात,
अश्रु-शर से विद्ध यह बरसात !
वे मिलन के रम्य क्षण अब क्यो न जाये भूल
हम नदी के दूरवर्ती कूल !

[६४]

प्यार से सूनी जवानी।
शुष्क मरुधर की शिला
जिस पर न बरसा बूँद पानी।

किस क्षुधा से जी रही है ?
किस तृषा को पी रही है ?
धैर्य-सबल दे रही है
किस स्वजन की मजु बानी।

वायु आती पर न बादल,
आह कढती पर न दृगजल।
चाँदनी बिछती, न आती
किन्तु चलकर ओस-रानी।

प्राण मधु ले-दे न पाये।
प्रेम-गगा में न न्हाये।
कौन जानेगा अतृप्ता के
हृदय की दुख-कहानी ?
प्यार से सूनी जवानी।

[६५]

भूल जीवन में सका मै।

अल्प परिचय, अल्प भाषण
अल्प प्राणो का प्रकाशन
उधर जीवन-युद्ध में दिन-
रात का हारा-थका मैं।
भूल जीवन मे सका मैं।

हुए दो ही तो महीने।
सुख न लाकर दी किसी ने।
विस्मृता का आज दु सवाद
सुन रो-रो पका मैं।
भूल जीवन में सका मै।

भूल पर अब क्या सकूँगा ?
याद जीवन भर रखूँगा।
आज खोकर जिस सखी को
सजल लोचन कर सका मैं।
भूल जीवन में सका मैं।

[६६]

प्यार है बधन तुम्हारा ।

मत मुझे बाँधो सुनयने !
क्यो चुभाओ नैन पैने ?
मैं सहज अलमस्त हूँ
भगवान का मुझको सहारा ।
प्यार है बधन तुम्हारा ।

स्वर्ण के ये घट हटा लो ।
रक पर मत मधु उछालो ।
एक रोटी की क्षुधा के
मोल जिसको विश्व सारा ।
प्यार है बधन तुम्हारा ।

मोह में पड क्यो ठगाओ ?
सार्थ यौवन कर न जाओ ।
जौहरी है, हाट है, है
रूप का जब रत्न न्यारा ।
प्यार है बधन तुम्हारा ।

औषधि की बूँद

अतुल आलोक-पुज दीप्त आज कण-कण,
अबर खचित-उड आया अवनी पर, यो
ज्योतित निशा हुई,
जगमग गृह-पुर,
वीथी, सब राजपथ,
राशिराशि बाल-वृद्ध हास और मोद युत
जा रहे गुंजाते पार्श्व
शीघ्र वायु-वेग से ।

नाचता हृदय है,
ताल दे रहा है श्वासजाल,
कौन-सा महोत्सव मनाने को समग्र विश्व
मत्र मुग्ध, भावलीन,
आत्मविस्मृति मग्न,
एक तान,
एक प्राण,
शून्य भान,
अविश्रान्त, राजप्रासाद ओर
उन्मुख हुआ है कहो ?

सुनते नही हो शहनाई,
बीन-वेणु-रव,
सुनते नही हो गीत गा रही पुरागना ?
देखते नही हो अहो,
मगल कलश,
शुभ्र तोरण है द्वार-द्वार ?
कुकुम छिडक रही,
दूर्वादल है बिछे,
राजपथ रुद्ध हो रहे है अति भीड से।

कोलाहल मध्य इस लोक-पारावार में
उमड रही है एक भावना
उपासना
है मूलमत्र जिसका
'विश्वभाव'
अन्यथा
राजसुता के इस विवाह-समारोह में
दीन-हीन,
अस्थिलीन,
व्याकुल, बुभुक्षित,
निरतर निपीडित
ककाल शेष
मद वेश

नारी-नर एक पैर जिनका
चितारूढ हो रहा—कैसे
हाँ-हाँ, कैसे समुल्लासमग्न
नाचते थिरकते ?
राका में बदल गई आज कुहू रजनी,
खँडहर खिल उठे,
विजन महक उठे,
रोम-रोम रच गया उत्सव के रँग में !
कहते है इच्छादान
हेम-हीर-मणियो का
हो रहा निरतर है
हय-गज-रथ-पट-भूषण-वसन
मुक्त हस्त हो लुटाते
तृप्त याचक-समूह, नही चाह शेष जिनमे;
किन्तु आशा-भग्न
शिखा बुझती-सा दीपक की
बूँद-बूँद शोषित हुआ है रक्त जिसका,
शेष नही वीर्य-बल
उच्छल
उमंग नही यौवन की
खेल रही थी जो कल सौरभ-सी फूल की ।

शय्यासीन अस्थिचर्म,
तार-तार आशा-वर्म,

मौन, निष्कप, नत आनन,
अधर नील,
आकृति विवर्ण, रद कातिहीन हड्डियो-से
श्वास-रुद्ध लोटता था युवक शरीर एक
औषधि की बूंद को तरसता ।

लौट वृद्ध पिता आये,
अवरुद्ध राजपथ,
लौट आये बधुवर्ग,
लौटे प्रतिवेशी सब,
पा सकी न अनुजा प्रवेश उस भीड में,
राजकर्मचारी जहाँ दड धरे घूमते,
अस्त्र-शस्त्रधारी बडे
सैनिक, पदाति, चर, दर्पित सवार
टप-टप-टप अश्व सुम ।
देते नही बढने किसी को पग एक वे
उस ओर पथ के,
विनय से और युक्ति से,
पशुबल से भी कभी
ठेलकर रोकते ।
किसको शरीर और प्राणो से
मोह नही अपने ?
ऐसा कौन जाकर कहे कि हटो,
जायेंगे, न मानेंगे

कार्य गुरुतर है बुलाता हमें
उस ओर
राज-सुता को चिर सुहाग की शुभाशीष
देता हुआ जाय चला ?

बैठ सब रहे हार मानकर घर मे,
साहस बटोर कर व्यथिता, प्रकपिता,
शून्य-दृष्टि माँ ने तब
हाथ फेर वक्ष पर बालक के यो कहा—
लाल मेरे, लाडले, दुलारे,
फूल किंशुक के,
आतप-किरण बिना शीतकाल-रजनी में
तुझे मुरझाने नही दूँगी प्राण रहते।

जाती हूँ मैं पल मे
लाँघकर राजपथ,
और अभी लाती हूँ
मुक्त कर जडित कपाट कविराज के,
वही सुधा,
प्राणमयी औषधि वही कि जिसे पीने से
लौट आते प्राण,
लौट श्वास आती,
रक्त-स्रोत वेग से उमडता,
प्राप्त करता है हृदय स्पदन क्षणेक मे।

रोकते ही रोकते
वृद्धा गई तीर-सी निकल राजमार्ग पर,
लकिनी-सी ठेलकर जाने लगी,
आकर पदाति ने
रोक लिया—कहा कि
"कहाँ जायेगी ?"
"एक बूंद, एक बूंद औषधि,
पड़ा है मृत्यु-सेज पर,
मेरा इकलौता,
मेरा रक्त-मास,
कोमल कुसुम-बाल ।"

"ओह ! किन्तु कर्तव्यलग्न खड़े हम,
आज्ञा से बँधे हुए,
दया-दाक्षिण्य नही,
अश्रु नही,
हास नही,
कोमल सुवास नही,
प्रस्तर-कठोर कर्म, आह ! पर ठहरो,
रोको पग आगे को उठाया हुआ अपना ।
मोती, माणिक्य कहो,
रत्न कहो,
धन कहो,

माँग लो सुवर्ण राशि,
व्यजन विविध-विध,
अशन-वसन वर,
इच्छित विभव माँगो,—किन्तु नही आगे पग

"क्या कहा ? रत्न-धन-वैभव की भीख
छि, हटो-हटो मूर्ख नही जानते
एक मुसकान पर वार कर फेक देती
राजकोश जिसके,
दुखित हृदय का वही टूक मम
मूर्छित-विसुध पडा
कठगत प्राण लिए।
निष्ठुर, हटो तो सही
धूल मे मिला दो यह रत्नराशि अपनी।
मानव नही हो तुम,
दानव, नृशस अरे !
अतिम क्षणो के श्वास
मेरे रिक्त कोश के
तुम हो खरीदते
हेम-हीरको के मूल्य, मन्द !
शोक,—हत-हा !"

"जननी, ओ मोहमयी !
देखती नही हो तुम
सूची का प्रवेश कहाँ ?
मगल के क्षण में,
अमगल-सी देख तुम्हें
देगा कौन जाने भला !
और फिर, कविराज भी तो नही
तुमको मिलेगे आज।
भोली, जाओ-जाओ लौट—
भर लो यहाँ से मनमानी रत्नराशि, सुनो
जिससे अनेक शिशु पा सकोगी
इच्छामात्र से कभी।"

"वैभव के कीट ! तुम मातृ-स्नेह जानो क्या ?
चूसकर छोड दिया शासन ने राग-रस मन का,
हृदय-विहीन,
अनुभूतिशून्य मानस तुम्हारा, आह !
रोष नही करती इसीसे क्षुद्र बुद्धि पर
दयापात्र हो तुम,
गुलाम शक्तिबल के।
मैं हूँ माँ,
मै हूँ उस बालक की जननी—
निहारता जो शून्य दृष्टि,
द्वार ओर मेरे लिए एकटक।

एक बूँद, एक बूँद औषधि
उसीके लिए लाने को—
व्यग्र हो रहा है मन,
चचल है प्राण,
तीव्र वेग है पगो का।
कौन रोकता मुझे है, देखूँ—
जा रही हूँ मै यहाँ—।"

हलचल-कोलाहल,
छिन्नभिन्न, मारपीट,
आह-ऊह, किन्तु कहाँ वृद्धा वह—
—वह व्यूह-भेदिनी ?
शपा सी दमक कर,
लीन जन-सागर में
हुई है कहाँ वह—
स्नेह-उन्मादिनी ?
एक बूँद औषधि, हाँ एक बूँद के लिए
तडप-तडप हाय, व्याकुल है रुग्ण बाल!
लुट रही सपति असख्य, पर—
एक बूँद औषधि गरीब के लिए नही!

महायुद्ध

युद्ध, महायुद्ध !
ओह, कैसा घोर कृत्य है यह
मानव के कर से ही मानव का नाश !
सिर छिन्न, धड छिन्न,
छिन्न कर-पद-मुख-बाहु,
रक्तपात, भीषण अनलदाह,
विस्फोट,
गर्जन, उपलवृष्टि,
झञ्झा, प्रलयकर विनाश, महानाश—अरे !
भूमिसात् पुर-घर,
ध्वस्त सभ्यता-शिखर,
सस्कृति-कला-कलश,
नीर नही बहती पयस्विनी
पिशाचिनी-सी रक्त उफनाती
उर्म्मियो से कर गीत-गान,
भैरवी, भयावनी, लयकरी, अशोभना !

करुणा कहाँ है आज ?
लज्जित विपन्न प्रेम,
स्निग्ध मन कुलिश-कठोर कटु तीक्ष्ण धार

घूर्णित अपार
धुंआ घुघ-पारावार
जन, जनपद, ग्राम-गृह रक्षित न हर्म्य
चीत्कार, हाहाकार सब ओर,
उच्च अट्ट, कोट तुग-स्तंभ
धूलिसात्,
निर्जन, निशब्द, नत गौरव, गिरे-पडे।

ज्ञानपीठ, व्यासपीठ,
आश्रम, तपोवन औ' विद्या के निकेतन
महान ग्रथागार कहाँ ?
कहाँ आज मदिर ?
कहाँ वे देवमूर्तियाँ
पत्थर मे प्राण फूंक गढी शिल्पियो ने जो ?
कहाँ गध-धूम ? कहाँ कीर्तन मृदग-ध्वनि ?
वज्र-घोर घर्घर सिरो पर जहाँ टूटते,
फूटते बमक बम,
अग्निशिखा फेंकते,
प्रलय बाहु में लपेट लेते
किसे छोडते !
ताडव निरत रुद्र, वसुधा कराहती,
स्तब्ध होते भानु,
लख ज्वलित कृशानु-जाल,
जल थल नभ अगार है उगलते !

खँडहर बिछ रहे,
नगर उजड रहे,
खेत शस्य शून्य पडे,
दीनता विचरती, न भोजन न अन्न
पथ-भ्रष्ट विश्व-सभ्यता,
मानव सिसकता,
मनुष्यता विनाश-ध्वजा उच्च किये घूमती।
राष्ट्र मिटते हैं,
देश-काल के महार्णव में
नित्य ध्वसलीला नव पौरुष पराक्रम से
रचती विभीषिका नई नई।
उठते ववडर हैं,
धू-धू चिता जलती,
भस्म होते शत्रु-मित्र,
जन्य जनक,
मात-सुता,
भेद नही रच जहाँ नारी-नर-शिशु का।
कौन बौद्ध, हिन्दू कौन ?
कौन पारसीक, बाह्लीक कौन ?
इस्लाम, क्रिस्तान कौन ?
कौन शूद्र, द्विज कौन ?
रक, धनकुबेर कौन ?
एक ही पराभव से भाग्यसूत्र सबका
बद्ध,

श्वास-रुद्ध सब जा रहे
अलक्ष्य, निरुद्देश्य वेश-भूषा हीन
दीन, च्युत-सस्कृति नगर-घर-देश त्याग ।

श्वापद बना है क्रुद्ध मानव,
प्रवुद्ध प्रलय
धर्म-कर्म, रीति-नीति मान्य नही उसको ।
हिसारत बौद्ध आज
दुर्मद न करते विवेक पाप-पथ का ।
चूडा पर पगोडो के बरस रही है आग
उन्ही भक्त हाथो से,
तथागत के नाम पर
भक्ति-नत होता जहाँ शीश जन-जन का ।
यही क्या—यही है क्या
सुफल अहिसा का ?
अमृत की बूंदें आह, सूख गईं कठ में ही
व्यर्थ वलिदान हुआ ईसा का महान वह
ईसवी सहस्र दो तक याद नही रख सका—
पामर कृतघ्न नर
वाणी वह
जिसमें भरी थी कल्याण-सुधा जग की ।
सूख नही पाया अभी रक्त भी सलीब का
ढोग उस भक्ति का
अधिक चलेगा नही ।

धराशायी चर्च होते ईसानुयायियो से,
कण-कण वसुधा का सिहर उठा है देख
यह अतिचार मद मानव-समाज का !

सागर का हृदय विलोडित-स्तब्ध नभ,
क्षुब्ध मेघ, पवन विकपित,
विजृम्भित कठोर गिरिमाला,
तृणराजि है सिहरती ।
मज्जित घृणा से पशु,
नत-शीश ग्लानि से
" 'यही है तेरा विश्वप्रेम'—कहते—
रे मानव ! प्रवचना के पुतले !
लाज भी नही है तुझे करते सदर्प यह विघोषणा
कि 'रक्षक हमी' हैं सभ्यता के और सस्कृति के,
वाहक स्वतत्रता के,
नियन्ता समाज के औ राष्ट्र के विधायक
सुनीतिवान, ज्ञानवान,
भूतिमान, प्रीतिवान मर्त्य में है कौन और ?
हम हैं प्रतीक उसी विश्वरूप सृष्टा के ।'
थोथी बात, थोथा दर्प,
मानव ! तुम्हारा यह,
रक्त से रँगे है हाथ जिसके स्वजाति के ।
छि छि, दूर करो विष वचना का यह,
न चाहिए तुम्हारा पाखड हमें ।"

आह, हतभाग्य नर !
नारकी विभीषिका में मग्न आकंठ आज
नभ से निधन औ दिगन्त से तिरस्कार
घृणा वसुधा से जिसे प्राप्त वरदान में।
जल रहा भीतर मे,
बाहर से आहत,
संतप्त, अभिशप्त रत निष्ठुर विनाश में।

प्रश्न भी है उत्तर भी खंडप्रलय आज का
वज्रघोष में भी एक आशा की किरण शुभ्र
झाँकती नही है क्या ?
क्या घनतम रात्रि के कठोर अवगुंठन में
दीप्त नही होते दामिनी से दिवा के अंग !
भरता प्रकाश नही जड जागृति में क्या ?
क्या दैन्य और दर्प आज
सोने नही जा रहे है साथ-साथ
एक मन्वन्तर को ?
सतयुग हेम-मुकुट ओढ कर मन्द चरण
आ रहा नही है क्या
करो में वरदान लिये
शाश्वत स्वतन्त्रता का,
समता, सुबन्धुता का ?